R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-3 मार्च 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

तीर्थधाम मङ्गलायतन के
वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-3 (वी.नि.सं. 2544) मार्च 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

जैसे माँ से बिछुड़ा बालक, माँ की रटन लगाता है।
सभी प्रश्न के उत्तर केवल, माँ-माँ कहके देता है॥
उसी प्रकार आतम की रुचि का, सच्चा भविजन होता है।
चाहे कोई हो प्रसंग पर, ज्ञायक धुन में रहता है॥43॥

आवश्यकता लगे जो रुचि में, वस्तु नियम से मिलती है।
एक ही चिंतन, मंथन अन्दर, एक ही धारा बहती है॥
जैसे माँ के प्रेमी को, माँ का ही चिंतन रहता है।
ज्ञानी को शुभभावों में भी आतम प्रेम ही रहता है॥44॥

अन्तर तल में जाकर, गहरे आतम की पहिचान करो।
शुभ परिणाम और धारण आदिक में, तुम मत अटको॥
अज्ञानी तो थोड़े में ही, अभिमानी हो जाता है।
नहीं अगाध स्वरूप समझता, बुद्धि चातुर्य बढ़ाता है॥
ज्ञानी को तो पूर्ण लक्ष्य है, नहीं अंश में रुकता है।
जो स्वभाव है वही प्रगटा है, अतः न मानी होता है॥45॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार

श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक

पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल

ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में
सहयोग-
**स्व. श्री सुमतिचन्द्र एवं
माता श्रीमती इन्द्राणी देवी
की स्मृति में श्रीयुत अजय,
विजय, रतन, पवन जैन
मुम्बई-दिल्ली-हाथरस**

क्या - कहाँ

आत्मा को समझने की जिज्ञासा 5

शुद्धोपयोगरूप धर्म ही मोक्षमार्ग है 7

सुखी होने के लिए प्रथम क्या करें ? 15

भगवान आचार्यदेव श्री माघनन्दि 21

मिथ्यात्व 24

तीर्थधाम मङ्गलायतन में शुरु हुई.... 31

समाचार-दर्शन 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्मा को समझने की जिज्ञासा

[समयसार, गाथा 72 पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री का सारगर्भित प्रवचनांश]

गुरुदेवश्री समयसार गाथा 72 पर प्रवचन में कहते हैं कि—ज्ञानस्वभावी आत्मा का चेतकस्वभाव है और रागादि भावों में चेतकपना नहीं है अर्थात् स्व-पर को जानने का स्वभाव नहीं है, वे दूसरे के द्वारा जाने जाते हैं।

'मैं राग हूँ' ऐसी राग को खबर नहीं, बल्कि उससे पृथक् ज्ञान ही उसे जानता है कि यह राग है, और मैं ज्ञान हूँ।

इस प्रकार ज्ञान और राग की भिन्नता है, एकता नहीं। जो जीव ऐसी भिन्नता का ज्ञान करता है, वह जीव ज्ञान में राग के अंश को नहीं मिलाता, इसलिए उसका ज्ञान रागादि आस्रवों से निवृत्त हुआ है, पृथक् हुआ है — जब ऐसा ज्ञान हो, तभी आत्मा मोक्षमार्ग में आता है।

शास्त्राभ्यास द्वारा कहीं आस्रव नहीं रुकते। ज्ञान अंतर्मुख होकर राग से भिन्न अपना अनुभव करे, तभी आस्रव छूटते हैं। आत्मज्ञान हो और राग में एकत्वबुद्धि रहे, ऐसा नहीं होता।

जिज्ञासु जीव को ऐसा लगता है कि यह रागादिभाव हमें दु:खदायक हैं और हमें उनसे छूटना है। इसलिए उनसे आत्मा कैसे पृथक् हो, ऐसा उसे प्रश्न उठा है। प्रश्न में उसने इतना तो स्वीकार किया है कि रागादिभावों में मेरा सुख नहीं और वह रागादिभाव मेरा स्वरूप नहीं; इसलिए उनसे छूटा जा सकता है, छूटने के लिए ही यह प्रश्न है।

ऐसा प्रश्न अन्तर में किसी को ही उठता है। आत्मा की यह बात श्रवण करनेवाले भी कम ही होते हैं और उसे समझकर अनुभव करनेवाले तो कोई विशेष ही होते हैं। यह तो जिसे आत्मा का प्रेम हो, उसकी बात है; संसार में पैसा आदि जिसे प्रिय लगता है, राग और पुण्य प्रिय है, उसे यह आत्मा की

बात कहाँ से अच्छी लगेगी ? आत्मा तो इन सबसे रहित एक ज्ञानानंदस्वरूप है। ऐसा आत्मस्वरूप समझने की सच्ची जिज्ञासा भी बहुत कम लोगों में जागृत होती है। साक्षात् अनुभव करनेवाला तो कोई विशेष ही होता है।

स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अपने आत्मा का परमेश्वररूप अनुभव में लिया, तब रागादिभावों से उसकी अत्यंत भिन्नता हुई। आत्मानुभूति विकल्प से परे है। कर्ता-कर्म का भेद उसमें नहीं, ज्ञान में इन्द्रियों का अवलंबन नहीं; आत्मा स्वयंप्रत्यक्ष विज्ञानघन है; वह विकल्पों से रहित अनुभूति मात्र है— ऐसे अपने स्वरूप का निर्णय करके जहाँ अंतर्मुख हुआ, वहाँ चैतन्य आत्मा अपने शांतरस में निमग्न होता है, विकल्पों के भँवर शांत हो जाते हैं और वह आस्रव से छूट जाता है। इस प्रकार ज्ञान का अनुभव ही दु:ख से छूटने का मार्ग है।

जीव को अरिहंत और सिद्धभगवान जैसा महान होना है। तो वह अपने को उनके ही समान महान (पूर्णस्वभाव से भरा हुआ) मानने पर होगा, या अपने को राग जैसा तुच्छ मानने से महान होगा ? सिद्धभगवान के समान ही मेरा शुद्ध चिदानंदस्वरूप है। ऐसा अंतर्मुख निर्णय करके उस स्वरूप के अनुभव द्वारा आत्मा स्वयं केवलज्ञान प्रगट करके सिद्धभगवान के समान महान होता है। परंतु मैं तो राग का कर्ता हूँ, मैं शरीर का कर्ता हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाला जीव कभी भी महान नहीं हो सकता। भेदज्ञान द्वारा ही महान हुआ जाता है।

भाई ! दूसरों के अवलंबन से तू सुखी होना मानता है, वह तो तेरी दीनता है। तेरी महानता तो इसमें है कि—मैं स्वयं सर्वज्ञता और पूर्ण आनंद से भरा हुआ भगवान हूँ। ज्ञान और सुख के लिए मुझे किसी का अवलंबन नहीं चाहिए। इस प्रकार स्वसंवेदन से अपने आत्मा की श्रद्धा करना चाहिए। जिन सिद्धभगवान को तू नमस्कार करता है, उनके समान होने का सामर्थ्य तुझमें है। आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। 'अप्पा सो परमप्पा' (सब जीव सिद्ध के समान हैं।)

शेष पृष्ठ 30 पर....

जयपुर में पूज्य गुरुदेवश्री के हुए प्रवचन का प्रवचनांश

शुद्धोपयोगरूप धर्म ही मोक्षमार्ग है

हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों!

वीतराग के इस आनंद-उत्सव में पधारो... पधारो... पधारो।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी शुद्धोपयोग से मोक्षलक्ष्मी की साधना करते हुए उसके मंगलरूप कहते हैं कि—अहो! इस मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर में मैं पंचपरमेष्ठी भगवंतों को मेरे आँगन में बुलाता हूँ, हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों! हे विदेहक्षेत्र में विराजमान सीमंधर भगवंतों! गणधर भगवंतों! आप सभी वीतराग के इस आनंद-उत्सव में पधारो.. पधारो...। मेरी शुद्ध चैतन्यसत्ता का निर्णय करके उसमें आपको पधराता हूँ, और समस्त रागादि परभावों को जुदा करता हूँ, ऐसे मंगलपूर्वक मोक्ष को साधने का यह मंगल स्तंभ रोपा जाता है।

शुद्धोपयोग धर्म, वही मोक्षमार्ग है, उसका अलौकिक वर्णन इस प्रवचनसार में है। जैन मुनि ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणमे हैं। अहा, धन्य उनका अवतार! धन्य उनकी दशा! मोक्ष उनको अत्यंत निकट है। चैतन्य के केवलज्ञान के कपाट खोलने के लिए वे कटिबद्ध हुए हैं, ऐसी मुनिदशा होती है। ऐसे मुनि को तो हम 'भगवान' मानते हैं। समस्त परिग्रह छोड़कर, आत्मज्ञान के उपरांत शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म को अंगीकार किया है। कदाचित् शुभ उपयोग होता है, परंतु उससे उदासीन है, अशुभ परिणति तो उनकी होती ही नहीं; देह की क्रिया सहजरूप से अनेक प्रकार की होती है, उसमें खींचतान नहीं करते। बाह्य में संपूर्ण दिगम्बर जैन सौम्य मुद्रा के धारक और अंतर में शुद्धोपयोग परम समता के धारक ऐसे वीतरागी संत-मुनियों के चरणों में नमस्कार हो... नमस्कार हो... णमो लोए सव्वसाहूणं।

अहो! परम पद को प्राप्त हुए ऐसे पंचपरमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया, उसमें शुद्धात्मा का ही आदर है। मुनियों को नमस्कार किया, उन मुनियों को शुद्धोपयोग है तथा साथ में अभी विकल्प भी है, परंतु वह

विकल्प कुछ वंदनीय नहीं, वंदनीय तो शुद्धोपयोग है—ऐसे विवेकपूर्वक नमस्कार किया है।

नमस्कार करने के समय स्वयं को जो शुभविकल्प है, उसे वह आदरणीय नहीं मानता, नमस्कार करनेयोग्य जो शुद्धोपयोग है; उसे ही आदरणीय मानता है। यदि राग को आदरणीय माने तो सच्चा नमस्कार नहीं होता; क्योंकि वह तो राग की ओर झुक गया है।

पंचपरमेष्ठी, उनमें चैतन्यसत्तावाले अनेक तीर्थंकर लाखों अरिहंत, अनंत सिद्ध भगवान तथा शुद्धोपयोगरूप परिणमे हुए करोड़ों मुनिवर, उन्हें पहिचानकर जिस ज्ञान ने उनकी शुद्धसत्ता का स्वीकार किया, उस ज्ञान की शक्ति कितनी? वह ज्ञान, राग में नहीं रुका; उसने तो राग से पार होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव को स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप किया है। इस प्रकार अपने शुद्ध आत्मतत्त्व के निर्णयपूर्वक पंचपरमेष्ठी को सच्चा नमस्कार होता है; वह मोक्ष के उत्सव का अपूर्व मंगलाचरण है। सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय आनंद का उत्सव का प्रसंग है, तथा मुनिदशा तो उग्र अतीन्द्रिय आनंद के उत्सव का प्रसंग है, उसका यह मंगल मुहूर्त होता है।

जेष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन समयसार, गाथा 6 में बताया कि देखो, यहाँ आत्मा का शुद्धस्वरूप दिखाते हैं। 'आत्मा शुद्ध है' ऐसा कब कहा जाता है?—कि जब आत्मा के सन्मुख होकर उसकी उपासना करे तब आत्मा को शुद्ध जाना, ऐसा कहा जाएगा।

कोई कहे—आपने आत्मा को शुद्ध कहा, सो हमने स्वीकार लिया!

उसे आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! किसके सन्मुख देखकर तूने स्वीकार किया? मात्र शब्द सुनकर 'हाँ' कहे, वह तो विकल्प है, उसको यथार्थ स्वीकार नहीं कहते। शब्दों के वाच्यरूप स्ववस्तु अंतर में कैसी है, उसके लक्ष्यपूर्वक ही उसका सच्चा स्वीकार होता है। वस्तु स्वयं के ज्ञान में आये, तभी उसका सच्चा स्वीकार होता है। ज्ञान के बिना अज्ञान में स्वीकार किसका? इस प्रकार स्वसन्मुख होकर ही शुद्ध आत्मा का स्वीकार होता है।

इसलिए कहा है कि समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्नरूप उपासना करने में आये, तब ज्ञायकभाव को 'शुद्ध' कहा जाता है। शुद्ध आत्मा की उपासना में अनंत गुणों की निर्मल पर्यायों का समावेश हो जाता है।

प्रश्न – वस्त्रसहित दशा में ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव होता है ?

उत्तर – हाँ, ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव सवस्त्रदशा में भी हो सकता है; तथा ऐसा अनुभव करे, तभी सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् मुनिदशा में तो बहुत ही उग्र निर्विकल्प अनुभव बारंबार होता है। गृहस्थ को तो कभी-कभी निर्विकल्प अनुभव होता है; परंतु ऐसे अनुभव से ही धर्म का प्रारंभ होता है, इसके बिना धर्म नहीं होता।

आत्मा 'ज्ञायकस्वभावी' है।

'ज्ञायक' पर को जानता है, ऐसा ज्ञेय-ज्ञायकपने का व्यवहार है; तो भी ज्ञेय की उपाधि उसे नहीं है। ज्ञेय है, इसलिए इसको ज्ञायकपना है— ऐसा नहीं, ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं; परज्ञेय की ओर न देखे और स्वयं अपने स्वरूप को ही स्वसन्मुख होकर जाने, तब भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है; परज्ञेयों की अपेक्षा ज्ञायक की नहीं। पर सन्मुख होकर जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं, इसलिए ज्ञान में पर की उपाधि नहीं।

अहो, ज्ञायक का ज्ञायकपना स्वत: अपने से ही है। परज्ञेय को जानने के समय भी वह तो स्वयं से ही ज्ञायक है; तथा परज्ञेय को न जाने, तब स्वज्ञेय को (स्वयं को) जानता हुआ वह स्वयं 'ज्ञायक' ही है। स्व-परप्रकाशक शक्ति स्वयं अपने से है, उसमें परज्ञेय की उपाधि या आलंबन नहीं।

आत्मा में वीतरागता की रचना करे, वह सच्चा आत्मवीर्य है, किंतु रागादि विकार को उत्पन्न करके संसार में भ्रमण करे, उसे सच्चा आत्मवीर्य नहीं कहते। यहाँ तो जो मुमुक्षु चारों गतियों के दु:खों से डरकर आत्मा का हित करना चाहता है, उसकी बात है। चारों गतियों का जिसे भय हो, वह उनके कारणरूप पुण्य को क्यों इच्छेगा ? जिसको पुण्य में मिठास लगती है, पुण्य का आदर है, उसे चारों गतियों का भय नहीं है, उसे नरक का भय है किंतु स्वर्ग की तो इच्छा है। जो पुण्य को इच्छता है, उसे स्वर्ग की इच्छा है,

और जो स्वर्ग को इच्छता है, उसे संसार की इच्छा है। जिसे मोक्ष की इच्छा हो, वह संसार के कारणरूप शुभराग को कभी भला न माने; वह तो चैतन्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले वीतरागभाव को ही भला मानता है। शुभराग का अंश भी धर्मी को कषाय की अग्नि समान लगता है। कहाँ वीतरागता की शांति और कहाँ राग की आकुलता? जैसे, शीतल जल में रहनेवाला मच्छ अग्नि में तो जलता है किंतु गर्म रेत में भी उसे जलने का दु:ख होता है; उसी प्रकार चैतन्य में शुद्धोपयोग की जो वीतरागी शीतल शांति, उसमें रहनेवाले संतों को अशुभ की तो क्या बात, परंतु शुभ में भी कषाय-अग्नि होने से आकुलता की जलन होती है, धर्मी उसे भी छोड़कर शुद्धोपयोगरूप समभाव को प्राप्त करना चाहता है, और वही मोक्षमार्ग है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कषाय-अंश ऐसे शुभ को छोड़कर अंतर में शुद्धोपयोगरूप साम्यभाव को अंगीकार किया; अर्थात् आत्मा में साक्षात् मोक्षमार्ग परिणमित किया। देखो, मोक्षमार्ग प्रगट होता है, उसकी स्वयं जीव को खबर होती है। प्रथम निर्विकल्प अनुभूति सहित सम्यग्दर्शन होता है, तब मोक्षमार्ग शुरु होता है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन के उपरांत चारित्रदशा की और उसमें भी शुद्धोपयोग की बात है। शुद्धोपयोग ही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

ज्ञायकभाव का अनुभव कराने के लिए समयसार की छठवीं गाथा में पर्याय-भेदों का निषेध किया, अर्थात् पर्यायभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार छुड़ाया; और सातवीं गाथा में गुणभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार को छुड़ाया है। इस प्रकार व्यवहार से पार एकरूप ज्ञायकभाव का निर्विकल्प अनुभव हो, तब शुद्ध आत्मा जानने में आता है। इस प्रकार भेदरहित शुद्ध आत्मा का अनुभव करके उसे शुद्ध आत्मा कहा है। विकल्प और भेद का अनुभव, वह अशुद्धता है; आत्मा के अनुभव में उसका अभाव है।

ऐसे आत्मा का अनुभव होने से चौथा गुणस्थान प्रगट हुआ, अर्थात् अपने में अपने परमात्मा का अनुभव हुआ; (परमात्मा की भेंट हुई)। इस परमात्मा में विभाव है ही नहीं, इसलिए उसकी चिंता परमात्मा में नहीं है। ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला धर्मी कहता है कि अहा! ऐसा हमारा

परमात्म तत्त्व, उसमें विभाव है ही कहाँ—कि हम उसको नष्ट करने की चिंता करें ? हम तो विभाव से पार ऐसे अपने परम तत्त्व का ही अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति, वही मुक्ति को स्पर्श करती है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार से मुक्ति नहीं, नहीं।

जो शुद्ध परम तत्त्व है, उसके अनुभव में ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनंद सभी का समावेश हो जाता है; किंतु मैं ज्ञान हूँ—मैं दर्शन हूँ—मैं चारित्र हूँ, ऐसे विकल्पों का परम तत्त्व में प्रवेश नहीं है; अत: आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद से कहना, वह भी व्यवहार है, ऐसे व्यवहार के आश्रय से विकल्प होता है, शुद्धतत्त्व अनुभव में नहीं आता, अभेद के आश्रय से शुद्धतत्त्व का निर्विकल्प अनुभव होता है।

'निकटवर्ती शिष्य को' अभेद समझाते समय बीच में भेद आ जाता है। शिष्य कैसा है ? निकटवर्ती है, उसमें दो प्रकार हैं।

— एक तो स्वभाव के पास आया है और शीघ्र ही स्वभाव को अनुभवनेवाला है, इसलिए निकटवर्ती है।

— दूसरा, समझने की जिज्ञासापूर्वक ज्ञानी गुरु के निकट आया है, इसलिए निकटवर्ती है।

— इस रीति से भाव तथा द्रव्य उन दोनों प्रकार से निकटवर्ती है।

स्वभाव बात सुनकर भड़ककर दूर नहीं भागता, परन्तु स्वभाव की बात सुनने के लिए प्रेम से नजदीक आता है, और सुनकर उसकी रुचि करके स्वभाव में नजदीक आता है। ऐसा निकटवर्ती शिष्य व्यवहार के भेदरूप कथन में न अटककर उसका परमार्थ समझकर आत्मा के स्वभाव का अनुभव कर लेता है। कैसा अनुभव करता है—कि अनंत धर्मों को जो पी गया है, और जिसमें अनंत धर्मों का स्वाद परस्पर किंचित् मिल गया है, ऐसे एक अभेद स्वभावरूप स्वयं को अनुभवता है। वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद का अनुभव नहीं करता, ऐसा अनुभव करने के लिए तत्पर होनेवाले निकटवर्ती शिष्य के लिए इस शुद्धात्मा का उपदेश है। स्वयं के स्वानुभव से ही ऐसा आत्मा प्राप्त होता है, दूसरी किसी रीति से प्राप्त नहीं होता।

धर्मी तथा धर्म के बीच स्वभावभेद नहीं; तथापि भेद का विकल्प करे तो एक धर्मी-आत्मा अनुभव में नहीं आता; भेदरूप व्यवहार से पार, अनंत धर्मस्वरूप एक आत्मा को सीधा लक्ष्य में लेने से निर्विकल्परूप से शुद्ध आत्मा अनुभव में आता है।

अपनी चैतन्यवस्तु का अनुभव करने पर गुण-गुणी भेद का विकल्प भी नहीं रहता, निर्विकल्प आनंद का अनुभव रहता है। मात्र आनंद का नहीं किंतु अनंत गुणों का रस अनुभव में एक साथ आता है। सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी दशा होती है।

सम्यग्दर्शन के समय शुद्धोपयोग होता है; किंतु 'यह शुद्धोपयोग और मैं आत्मा' ऐसा भेद भी वहाँ नहीं; अभेद एक वस्तु का ही अनुभव है। मैं शुद्ध हूँ—ऐसा भी विकल्प अनुभूति में नहीं। 'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसे विकल्प से क्या साध्य है ? उस विकल्प में आत्मा नहीं, विकल्प से पार होकर ज्ञान जब स्व-सन्मुख एकाग्र हुआ, तब आत्मा साक्षात् अनुभव में आया, तब वह ज्ञान इन्द्रियों से तथा आकुलता से पार होकर आत्मा के सन्मुख हुआ। आत्मा स्वयं के यथार्थ स्वरूप से अपने में प्रसिद्ध हुआ—ऐसी सम्यग्दर्शन की रीति है।

मिथ्यात्व तो अनादि का है, लेकिन ज्ञान जहाँ जागृत हुआ व ज्ञानस्वभावरूप अपना निर्णय करके, राग से भिन्न होकर स्वसन्मुख हुआ, तब एक क्षण में सम्यग्दर्शन होता है। एक क्षण में मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्रगट करने की आत्मा में अचिंत्य शक्ति है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए आचार्यदेव शुद्ध आत्मा का स्वरूप समझाते हैं, तब शिष्य आँखें फाड़कर अर्थात् समझने की जिज्ञासा से ज्ञान को एकाग्र करके लक्ष्य में लेता है; उसे शुद्धात्मा को लक्ष्य में लेने की भावना है। सुनते-सुनते उसे नींद नहीं आती, अथवा शंका नहीं होती या कंटाला नहीं आता, परंतु समझने के लिए ज्ञान को एकाग्र करता है।

शुद्धात्मा का स्वरूप सुनते ही उसमें उपयोग एकाग्र करता है, प्रमाद नहीं करता, 'पीछे विचार करूँगा; घर जाकर करूँगा, फुरसत मिलने पर करूँगा'—ऐसी बेदरकारी नहीं करता, किंतु तत्काल ही शुद्धात्मा में उपयोग

को एकाग्र करके आनंदपूर्वक अनुभव करता है।—ऐसी उत्तम पात्रतावाला शिष्य शीघ्र ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। जैसे ऋषभदेव के जीव को जुगलिया के भव में मुनियों ने सम्यग्दर्शन का उत्तम उपदेश देकर कहा कि हे आर्य! तू अभी ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण कर (तत्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते।)—उसी समय अंतर्मुख होकर उस जीव ने सम्यग्दर्शन प्रगट किया।—इस प्रकार यहाँ उत्तम पात्रतावाले जीव की बात की है।

श्रीगुरु ने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को समझाने के लिए भेद से कहा कि 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा है', इतना सुनकर शिष्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद के विकल्प में खड़ा नहीं रहा, परंतु भेद को छोड़कर अभेद में एकाग्र करके सीधा आत्मा को पकड़ लिया कि अहो! ऐसा मेरा आत्मा गुरु ने मुझे बताया। इस प्रकार श्रीगुरु ने भेद द्वारा अभेद आत्मा को समझाया तथा पात्र शिष्य भी तत्काल भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा को समझ गया। विलंब नहीं किया, दूसरे किसी लक्ष्य में नहीं अटका, किंतु शीघ्र ही ज्ञान को अंतर में एकाग्र करके आत्मा को समझ गया; उसी समय अत्यंत आनंद सहित सुंदर बोध तरंग उछलने लगी। अहा, ज्ञान के साथ परम आनंद की लहरें उछल पड़ी... मानो परिपूर्ण आनंद का सागर ही उछला हो। अपने में ही आनंद का सागर देखा। निर्विकल्प अनुभूति से भगवानस्वरूप स्वयं ही अपने में प्रगट हुआ।

जैसे इस शिष्य ने तत्काल निर्विकल्प आनंदसहित आत्मा का अनुभव किया, वैसे प्रत्येक जीव में ऐसा अनुभव करने की शक्ति है। वाणी में या विकल्प में कहीं भी न अटक कर अंतर में ज्ञान को एकाग्र किया, तभी अतीन्द्रिय ज्ञान की तरंगें परम आनंद के अनुभवसहित प्रगट हुईं। सम्यग्दर्शन होने के समय का यह वर्णन है।

श्रोता-शिष्य ऐसा पात्र था कि भेद की दृष्टि छोड़कर सीधा अभेद में एकाग्र हो गया, भेद-व्यवहार-शुभ का आलंबन छोड़ने में उसे संकोच नहीं हुआ; शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेते ही अपूर्व आनंद सहित ऐसा निर्मल ज्ञान प्रगट हुआ कि सभी भेद-व्यवहार-राग का आलंबन छूट गया। ज्ञान और

राग की अत्यंत भिन्नता अनुभव में आ गई। ज्ञान के साथ आनंद होता है; जिस ज्ञान में आनंद का वेदन नहीं, वह सच्चा ज्ञान ही नहीं। आनंदरहित मात्र ज्ञान के विकास को वास्तव में ज्ञान नहीं कहते। केवल परलक्षी ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं।

शिष्य सीधा अभेद में नहीं पहुँच सका था, तब तक बीच में भेद था, श्रीगुरु ने भी भेद से समझाया था, किंतु वह भेद, भेद का आलंबन कराने के लिए नहीं था, वक्ता या श्रोता किसी को भेद के आलंबन की बुद्धि नहीं थी, उनका अभिप्राय तो अभेद वस्तु को ही बताकर उसी का अनुभव करने का था। उस अभिप्राय के बल से ज्ञान को अंतर के अभेद स्वभाव में एकाग्र करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलंबन भी छोड़ दिया और तत्काल ही महान अतीन्द्रिय आनंदसहित सम्यग्ज्ञान की सुंदर तरंगें उल्लसित हो उठीं; सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान तथा परम आनंद हुआ। ऐसी निर्विकल्प अनुभूतिसहित शिष्य निज शुद्धात्मा का स्वरूप समझा।

जो ऐसे भाव से समयसार सुने, उसे भी निर्विकल्प आनंद के अनुभव सहित सम्यग्दर्शन अवश्य होगा। यहाँ तो कहते हैं कि विलंब न होकर तत्काल ही होगा। निज आत्मा की प्राप्ति के लिए जिसकी सच्ची तैयारी हो, उसे अवश्य एवं शीघ्र ही उसकी प्राप्ति हो जाएगी; अरे, आकाश में से उतरकर संत उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझाएँगे। जैसे महावीर के जीव को सिंह के भव में, और ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के भव में सम्यक्त्व प्रगट करने की तैयारी होने से, ऊपर से गगन-विहारी मुनियों ने वहाँ उतरकर उनको आत्मा का स्वरूप समझाया, और उन जीवों ने भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। किस प्रकार से प्राप्त किया ? वह बात इस गाथा में समझाई है। भेद का लक्ष्य छोड़कर, अनंत धर्मों से अभेद आत्मा में ज्ञान को एकाग्र करने से, निर्विकल्प आनंद के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, सुंदर बोध तरंगें उल्लसित हुईं। इस प्रकार तत्काल सम्यग्दर्शन होने की रीति समझाकर संतों ने तो मार्ग सरल कर दिया है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-27, अंक-4]

सुखी होने के लिए प्रथम क्या करें ?

[श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ का स्वाध्याय कीजिए]

संयोगीदृष्टि और संयोगी भाव के आलंबन से दु:ख हो रहा है। संयोग किसी को सुख-दु:ख दे नहीं सकते। इस संसार में सभी प्राणी अनादि काल से चारों गतियों में जन्म-मरण करते-करते महान दु:ख उठा रहे हैं। तिर्यंच (पशु-पक्षी आदि) और मनुष्य गति के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मारण-ताड़न आदि शारीरिक एवं मानसिक दु:ख प्रत्यक्ष ही दिखते हैं। जिन्हें देखकर कौन भयभीत नहीं होता? किंतु आश्चर्य यह है कि फिर भी अधिकांशत: जीव वास्तविकता से अनभिज्ञ होकर, झूठे, नाशवान पराधीन इन्द्रिय-जनित दु:खों को सुख की भ्रमणा में अनंत दु:ख परिपाटी को भोग रहे हैं। और जो थोड़े से जीव संसार दु:खों से ऊब भी जाते हैं, उन्हें सच्चे सुख का यथार्थ मार्ग ज्ञात नहीं है, अत: वे दु:ख निवारण का उल्टा उपाय करके दलदल में फँसे हाथी या जाल में फँसे मृग की भाँति-जितना प्रयत्न करते हैं, उतना और उलझते जाते हैं।

क्या आपने भी कभी एकांत में बैठकर इस रहस्य पर विचार किया है कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? और इस क्षणभंगुर लीला को समाप्त करके कहाँ चला जाऊँगा? अपार जैन समूह बचपन से बुढ़ापे तक, सुबह से शाम तक और यहाँ तक कि दिन-रात, खाने-कमाने और शरीर की व्यवस्था में व्यस्त हैं और कभी इन तथ्यों पर दृष्टि डालने का सुयोग ही नहीं निकालता।

किंतु वास्तव में सच्चे सुख की प्राप्ति और दु:खों से बचने का उपाय स्वाध्याय से ही विदित होता है। स्वाध्याय शब्द स्वयं ही चरितार्थ करता है—

(स्व+अध्ययन) अर्थात् आत्म-निरीक्षण। स्वाध्याय गृहस्थ के षट् आवश्यकों में मुख्य है क्योंकि शेष पाँच आवश्यकों का वास्तविक स्वरूप

तथा उन्हें आचरण करने का सम्यक् प्रकार स्वाध्याय से ही जाना जाता है। अत: स्वाध्याय द्वारा कल्याण के मर्म को हृदयंगम करके उसे जीवन में उतारना चाहिए।

अब विचार यह करना है कि किन शास्त्रों का स्वाध्याय करना विशेष हितकर है।

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की धारा प्रवाहरूप विशाल उपदेश गंगा में से भरे हुए कलशों के समान इस समय भी जैन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महान ग्रंथ षट्-खंडागम, अष्टपाहुड़, नियमसार, जयधवल, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, पंचाध्यायी, रत्नकरण्डश्रावकाचार, गोम्मटसार आदि संस्कृत प्राकृत के ग्रंथ, उपलब्ध ग्रंथ हैं। जिनके अध्ययन के लिए न्याय, व्याकरण आदि का विशेष ज्ञान एवं समय की आवश्यकता है किंतु हम जैसे अल्प आयु और अल्प ज्ञानवाले जीवों को उन महान ग्रंथों के निचोड़रूप अमृत-प्याले के समान ऐसे संक्षिप्त ग्रंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है जो सरल-सुगम भाषा में द्वादशांग वाणी के सार को समझानेवाले हों। ऐसे ग्रंथों में आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी विरचित 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ विशेष उपयोगी और अनुपम ग्रंथ है।

इस ग्रंथ और ग्रंथकर्ता का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है:—

श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पाद की रचना है। इसकी भाषा ढूँढ़ारी है जो अत्यंत सरल, रोचक व सुबोध है। इन ग्रंथ में मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूज जीवादि तत्त्व तथा देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का यथार्थ निरूपण किया गया है। इसमें सूक्ष्म तत्त्वचर्चाओं को भी बड़ा सरल बनाने का प्रयास किया है। जिस विषय को उठाया है, उस पर खूब ऊहापोह किया है और उस विषय के प्रत्येक पहलू पर विचार किया है, साथ ही शंका-समाधान के द्वारा विषय का स्पष्टीकरण भी किया है, जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप सहज ही समझ में आ जाता है। यह ग्रंथ, प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों के महान ग्रंथों का रहस्य खोलने की अनुपम कुंजी है,

धर्म-पिपासुओं के लिए अमृत है, जिसे पीते जाने पर भी तृप्ति नहीं होती। इस ग्रंथ की रहस्यपूर्ण गंभीरता और उत्तम धर्मबद्ध विषयरचना को देखकर बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि भी आश्चर्यचकित हो जाती है। इस ग्रंथ को निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन करने पर अनुभव होता है कि यह कोई साधारण ग्रंथ नहीं है किंतु उच्च कोटि का ग्रंथराज है।

इस ग्रंथ में नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में ग्रंथ की भूमिका, मंगलाचरण का प्रयोजन, पंचपरमेष्ठी का स्वरूप, अंगश्रुत की परंपरा व ग्रंथ की प्रामाणिकता आदि का वर्णन है। दूसरे अध्याय में सांसारिक अवस्था का निरूपण है। तीसरे अध्याय में दु:ख के मूल कारण मिथ्यात्व, विषयाभिलाषाजनित दु:ख, मोही जीव के दु:ख-निवृत्ति के उपायों का झूठापना और दु:ख-निवृत्ति का सच्चा उपाया बताया है। चौथे अध्याय में दु:ख का मूल कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र का वर्णन, प्रयोजनभूत, अप्रयोजनभूत पदार्थों की समझा, और इनमें गलत समझने से होनेवाली राग-द्वेष की प्रवृत्ति का स्वरूप बतलाया है। पाँचवें अध्याय में आगम और युक्ति के आधार से विविध मतों की समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्व का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है। साथ ही अन्यमत के प्राचीन ग्रंथों के उदाहरण द्वारा जैनधर्म की प्राचीनता और महत्ता को पुष्ट किया है। छट्ठे अध्याय में गृहीत मिथ्यात्व के निमित्तकारण कुगुरु-कुदेव और कुधर्म का स्वरूप और उनकी सेवा से होनेवाली हानि को बतलाया है।

सातवें अध्याय में जैन मिथ्यादृष्टि का विस्तृत वर्णन है। एकांत निश्चयावलंबी जैनाभास, एकांत व्यवहारालंबी जैनाभास, उभयनयावलंबी जैनाभास का युक्तिपूर्ण कथन किया गया है। जिसके पढ़ते ही जैनदृष्टि का सत्यस्वरूप सामने आ जाता है और उनकी विपरीत मान्यता, जो व्यवहार व निश्चयनयों का ठीक अर्थ न समझने के कारण हुई थी, वह दूर हो जाती है। आठवें अध्याय में चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग व द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग) के शास्त्रों की कथनशैली, उनका स्वरूप

प्रयोजन और शास्त्रों में दोषकल्पनाओं का समाधान दिया गया है। नववें अध्याय में मोक्षमार्ग के स्वरूप का निर्देश, सम्यक् पुरुषार्थ से ही मोक्षप्राप्ति का नियम, सम्यग्दर्शन के लक्षणों में विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थश्रद्धान को मुख्य सिद्ध कर उस श्रद्धान में चारों लक्षणों की व्याप्ति बताई है। किंतु खेद है कि मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन का स्वरूप भी पूरा नहीं लिखा जा सका, हमारे दुर्भाग्य से 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ अपूर्ण रह गया। यदि ग्रंथ पूरा हो जाता तो वह अद्वितीय होता, फिर भी जितना लिखा जा सका है, वह अपने आपमें परिपूर्ण और मौलिक कृति के रूप में जगत का कल्याण कर रहा है। इस ग्रंथ के अध्ययन से कितने जीवों का भला हुआ है तथा कितने लोगों की दिगंबर जैनधर्म पर दृढ़ श्रद्धा हुई है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी कारण इस ग्रंथ ने जैन समाज में ऐसा स्थान बना लिया है कि इसका नाम सुनते ही इस ग्रंथ के प्रति श्रद्धा उमड़ आती है। इस ग्रंथ की उपयोगिता व लोकप्रियता का प्रमाण है कि इसका अनुवाद आधुनिक-हिन्दी, मराठी व गुजराती भाषाओं में भी हो चुका है तथा इसकी अब तक 42,000 प्रतियाँ मुद्रित हो चुकी हैं। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों के प्राय: सभी मंदिरों में हैं, जिनकी संख्या हजारों में है।

ग्रंथकार का परिचय - श्री 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ के रचयिता पंडित टोडरमलजी का जन्म लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वि० सं० 1787 के लगभग जयपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जोगीदास और माता का नाम रम्भाबाई था। आप खंडेलवाल दिगंबर जैन गोदीका गोत्रज थे। पंडितजी की स्मरण शक्ति विलक्षण थी। आपने 10-11 वर्ष की आयु में ही न्याय, व्याकरण एवं गणित जैसे कठिन विषयों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपके गुरु का नाम वंशीधर था। आपकी मृत्यु 37-38 वर्ष की अल्पायु में सामाजिक विद्वेष के कारण हुई थी। पंडितजी अबाधित न्यायवेत्ता एवं सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों को ही सत्य माननेवाले दृढ़

श्रद्धानी थे। पंडितजी की बहुज्ञता अद्वितीय थी। आप स्वयं 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिखते हैं—

'टीका सहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, आत्मानुशासन आदि शास्त्र, अर श्रावक मुनि के निरूपक अनेक शास्त्र, अरु सुष्ठ कथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं, तिन विषैं हमारे बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्ते है।'

इससे ज्ञात होता है कि पंडितजी ने सिद्धांत व आध्यात्मिक रूप चारों अनुयोगों के ग्रंथों का अध्ययन करके आगमोक्त उपयोगी सर्व रहस्य का अनुगम किया। जिसके फलस्वरूप गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि महान ग्रंथों की टीका की और जिनवाणी का संपूर्ण सार लेकर अति सुगम शैली द्वारा इस ग्रंथ 'मोक्षमार्गप्रकाशक' की रचना कर जीवों को अमूल्य आत्मनिधि का ज्ञान कराया। यदि यह ग्रंथ आज न होता तो हमें जिनागम के गूढ़ रहस्य तथा प्रयोजनभूत तत्त्व स्पष्टता से समझने में न आते। इसी कारण पंडित टोडरमलजी को आचार्यकल्प के नाम से स्मरण किया जाता है।

अंत में तत्त्व-जिज्ञासुओं व आत्मकल्याण के इच्छुकों से निवेदन है कि वे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का नियमितरूप से स्वाध्याय करके सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वों का यथार्थ निर्णय कर व अपनी आत्मा में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करके अनादिकालीन मिथ्यात्व का नाश करें। स्वयं पंडितजी ने भी इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय के अंत में स्वाध्याय की महत्ता बताई है—

'बहुरि प्रवचनसार विषै भी मोक्षमार्ग का अधिकार किया, तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कहा है, सो इस जीव का तो मुख्य कर्तव्य आगमज्ञान है, याको होतैं तत्त्वनिका श्रद्धान ही है, तत्त्वनिका श्रद्धान भए संयम भाव ही है और तिस आगम तै आतमज्ञान की भी प्राप्ति हो है। तब सहज ही मोक्ष की

प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म के अनेक अंग हैं, तिन विषैं एक ध्यान विना यातैं ऊंचा और धर्म का अंग नाहीं है, तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथ (मोक्षमार्गप्रकाशक) का तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादि का भी साधन न चाहिये, तातैं अवश्य याका अभ्यास विषैं प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।'

पंडित प्रवर श्री दौलतरामजी भी छहढाला में तत्त्व-अभ्यास करने की प्रेरणा करते हैं-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन,
इह परमामृत जन्म जरा मृति रोग निवारण;
तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै,
संशय विभ्रम मोह त्याग आपौ लख लीजै;
यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवानी,
इह विधि गये न मिले सुमनि ज्यों उदधि समानी॥

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-27, अंक-4]

अरिहंतों का पंथ... वही हमारा पंथ

तुम्हारा पंथ क्या ? पंथ अर्थात् मार्ग; अरिहंत भगवंतों का जो मार्ग है, वही हमारा मार्ग है, हम अरिहंत के पंथ के हैं।

अरिहंतों का पंथ अर्थात् आत्मा के आश्रय से प्रगटित शुद्ध रत्नत्रय; उसी मार्ग से अरिहंत मोक्ष में गए हैं, और हमारा भी वही मार्ग है। ऐसे शुद्ध रत्नत्रयरूप अरिहंत मार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से मुक्ति नहीं है—नहीं है।

शुद्धरत्नत्रय के अलावा दूसरे किसी रागादि भाव से जो मोक्ष होना माने, वह अरिहंत के मार्ग को नहीं मानता, अत: वह अरिहंत के पंथ में भी नहीं है। *[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-27, अंक-2]*

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव श्री माघनन्दि

आचार्य अर्हद्बलि द्वारा पंचवर्षीय युग-प्रतिक्रमण के समय मुनिसंघ में एकत्व की भावना स्थायी बनी रहे, इस हेतु नन्दि, गुणधर, सेन, गुप्त आदि विविध गण स्थापित हुए। आचार्य अर्हद्बलि द्वारा उक्त विविध संघों की स्थापना के साथ आचार्य माघनन्दि मुनियों में श्रेष्ठ थे, क्योंकि आप पूर्वधर (पूर्वों के ज्ञाता अर्थात् अंगांशधारी) तथा अनहद ज्ञानी होते हुए भी आप बड़े तपस्वी थे। इस बात की परीक्षा के लिए गुरु अर्हद्बलि के आदेश अनुसार एक बार आपने नन्दिवृक्ष (जो छायाहीन होता है) के नीचे वर्षायोग धारण किया था। इसी से उनको तथा उनके संघ को 'नन्दि' की संज्ञा प्राप्त हो गई थी। नन्दिसंघ की पट्टावली में आपका नाम भद्रबाहु तथा गुप्तिगुप्त (अर्हद्बलि) को नमस्कार करने के पश्चात् सबसे पहले आता है और आपका काल पट्टावली में वी० नि० 575 से प्रारम्भ किया गया है, इसलिए अनुमान होता है कि उक्त घटना इसी काल में घटी थी और उसी समय आचार्य अर्हद्बलि के द्वारा स्थापित इस संघ का आद्य पद आपको प्राप्त हुआ था। नन्दि, सेन, पंचस्तूप, गुणधर, पुन्नाट, सिंह आदि नामों से भिन्न-भिन्न संघ स्थापित करने पर भी उसमें नन्दिसंघ का स्थान सर्वोपरि समझा जाता है। जिनधर्म के मुख्य प्रवाह में नन्दिसंघ की ही परम्परा अभी तक मुख्यरूप से चल रही है।

नन्दिसंघ की संस्कृत गुर्वावली में भी माघनन्दि का नाम आया है। इस पट्टावली के प्रारम्भ में भद्रबाहु और उनके शिष्य गुप्तिगुप्त (अर्हद्बलि) को वन्दना की गई है, किन्तु उनके नाम के साथ संघ आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। उनकी वन्दना के पश्चात् मूलसंघ में नन्दिसंघ बलात्कारगण के उत्पन्न होने के साथ ही माघनन्दि का उल्लेख किया गया है। सम्भव है कि संघभेद के विधाता अर्हद्बलि आचार्य ने उन्हें ही नन्दिसंघ का अग्रणी बनाया हो। उनके नाम के साथ 'नन्दि' पद होने से भी आपका इस गण के साथ सम्बन्ध प्रकट होता है।

आचार्य माघनन्दि का उल्लेख 'जंबूदीपपण्णत्ति' के कर्ता आचार्य पद्मनन्दि ने भी किया है और उन्हें राग, द्वेष और मोह से रहित, श्रुतसागर के पारगामी, मति-वल्लभ[1], तप और संयम से सम्पन्न तथा विख्यात कहा है।

आचार्य माघनन्दि सिद्धान्तवेदी के सम्बन्ध में एक कथानक भी प्रचलित है। कहा जाता है, कि माघनन्दि मुनि एक बार चर्या के लिए नगर में गए थे। वहाँ एक कुम्हार की कन्या ने इनसे प्रेम प्रकट किया और मोहवश वे उसी के साथ रहने लगे। कालान्तर में एक बार संघ में किसी सैद्धान्तिक विषय पर मतभेद उपस्थित हुआ और जब किसी से उसका समाधान नहीं हो सका तब संघनायक ने आज्ञा दी, कि इसका समाधान माघनन्दि के पास जाकर किया जाए। अत: साधु माघनन्दि के पास पहुँचे और उनसे ज्ञान की व्यवस्था माँगी। माघनन्दि ने पूछा, 'क्या संघ मुझे अभी भी सत्कार देता है ?' मुनियों ने उत्तर दिया, 'आपके श्रुतज्ञान का सदैव आदर होगा।' यह सुनकर माघनन्दि को पुन: वैराग्य हो गया और वे अपने सुरक्षित रखे हुए पीछी-कमण्डल लेकर दीक्षित होकर, पुन: संघ में आ मिले। 'एक ऐतिहासिक स्तुति' शीर्षक से इसी कथानक का एक भाग बताते हुए व उसके साथ सोलह श्लोकों की एक स्तुति भी है। जिसमें कहा है, कि माघनन्दि ने अपने कुम्हार-जीवन के

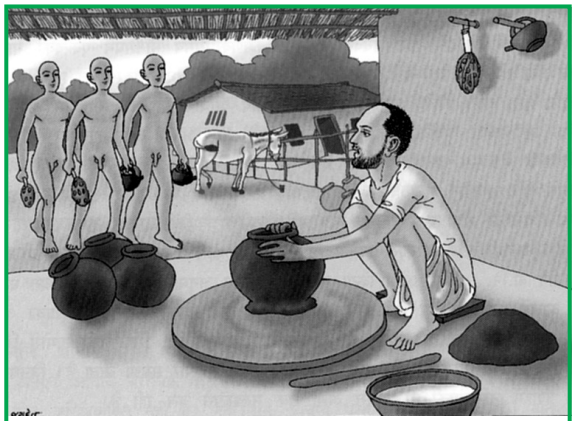

माघनन्दि कुम्हार अवस्था में थे, उस समय उन्हें ज्ञान विषयक प्रश्न पूछते मुनिवर।

1. चतुर, होशियार, हाजिरजवाबी, प्रत्युत्पन्नमति, प्रतिभाशाली, बुद्धिवाला, नि:संकोच बोलनेवाला, गम्भीर मतिवाला।

समय कच्चे घड़ों पर थाप देते समय गाते-गाते यह बनाया था। यदि इस कथानक में कुछ तथ्यांश हो तो सम्भवत: वह माघनन्दि नाम के आचार्यों में से उक्त आचार्य के सम्बन्ध में हो सकता है, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोला के अनेक शिलालेखों में आया है। इनमें से शिलालेख नं० 129 में बिना किसी गुरु-शिष्य सम्बन्ध के माघनन्दि को जगत्प्रसिद्ध सिद्धान्तवेदी कहा है। यथा—

नमी नम्रजनानन्दस्यन्दिने माघनन्दिने।
जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तवेदिने चित्प्रमोदिने ॥4॥

विद्वानों के मतानुसार आप अंगांशधारी विद्वान आचार्य थे व आपका काल ई० स० 47-87 माना जाता है। यद्यपि आचार्य धरसेन भी आचार्य अर्हद्बलि के समकालीन व पूर्वधर थे, पर वे एकान्तप्रिय तपस्या करनेवाले थे, जबकि आचार्य माघनन्दि संघसंचालन में कुशल होने से नन्दिगण आचार्य माघनन्दि के नाम से वृद्धिंगत हुआ। अत: आचार्य माघनन्दि व आचार्य धरसेन की अलग-अलग पट्टावलियाँ दिखाई देती हैं। विद्वानों का यह भी मानना है, कि हो सकता है, कि आपके गुरु आचार्यवर अर्हद्बलि के समकालीन होते हुए भी आप आचार्य अर्हद्बलि के शिष्य थे व आचार्य माघनन्दि के शिष्य आचार्य जिनचन्द्राचार्य होने चाहिए। [1]मूलसंघ की पट्टावलियों व अन्य पट्टावलियों पर से विद्वानों का मानना है कि आचार्य माघनन्दि के पश्चात् आचार्य जिनचन्द्रदेव का व तत्पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द का नाम होने से आचार्य माघनन्दि के शिष्य आचार्य जिनचन्द्र ही आचार्य कुन्दकुन्दप्रभु के गुरु होने चाहिए।

आचार्य माघनन्दि भगवन्त को कोटि कोटि वन्दन।

---

1. भगवान महावीर पश्चात् दिगम्बर जैनाचार्यों में मूलसंघ की परम्परा विशेषकर कुछ शास्त्रों में उपलब्ध होती है। जैसे कि (1) भगवान यतिवृषभाचार्यकृत तिलोयपण्णत्ति, (2) भगवान श्री इन्द्रनन्दि अचार्यकृत श्रुतावतार, (3) धवला, (4) हरिवंशपुराण आदि। उनमें से कालादि के प्रमाणादि व इतिहास आदि के प्रमाण से विद्वानों का मानना है कि 'श्रुतावतार' ग्रन्थ में दी गई मूलसंघ की पट्टावली ज्यादा योग्य प्रतीत होती है।

मिथ्यात्व

(1) मिथ्यात्वसंयुक्त जीवों को अरहंत देव, निर्ग्रंथ गुरु और निर्मल जिनभाषित धर्म आदि की प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥ गाथा 1 ।

(2) जो सुख के लिए कुदेवों को पूजते हैं, वे जीव उल्टे अपनी गाँठ का सुख खोते हैं और मिथ्यात्वादि के योग से पाप बाँधकर नरकादि में दु:ख भोगते हैं ॥3 ॥

(3) मिथ्यात्व के उदय में रक्ताम्बर व पीताम्बर आदि मिथ्या वेषधारियों को धर्म के लिए हर्षित होकर पूजता है परंतु धर्म की तो इससे उल्टे हानि ही होती है ॥5 ॥

(4) मिथ्यात्व से मारे गए कुगुरुओं के निकट संसार से उदासीनता उत्पन्न हो ही नहीं सकती ॥8 ॥

(5) मिथ्यात्व व कषाय के वशीभूत हुए अज्ञानी जीव संसार भ्रमण के कारणरूप कर्म को हँस-हँस के बाँधते हैं ॥9 ॥

(6) सब पापों में मिथ्यात्व सबसे बड़ा पाप है क्योंकि व्यापारादि आरंभ से उत्पन्न हुए पाप के प्रभाव से जीव नरकादि दु:खों को तो पाता है परन्तु उसे कदाचित् मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो जाती है, पर मिथ्यात्व के अंश के भी विद्यमान रहते हुए जीव को मोक्षमार्ग अतिशय दुर्लभ होता है, वह सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तपमयी बोधि को प्राप्त नहीं कर पाता ॥10 ॥

(7) जिनके तीव्र मिथ्यात्व का उदय है, उन्हें जिनवाणी नहीं रुचती ॥13 ॥

(8) मिथ्यात्व के तीव्र उदय में विशुद्ध सम्यक्त्व का कथन करना भी दुर्लभ होता है जैसे पापी राजा के उदय में न्यायवान राजा का आचरण दुर्लभ होता है ॥17 ॥

(9) वह ही कथा है, वह ही उपदेश है और वह ही ज्ञान है, जिससे जीव मिथ्या और सम्यक् भावों को जाने ॥24 ॥

(10) जिनराज को पा करके भी यदि मिथ्यात्व नहीं जाता तो इसमें बड़ा आश्चर्य है ॥25॥

(11) जिन्होंने अधिक जलादि की हिंसा के कारण रूप ऐसे होली, दशहरा एवं संक्रान्ति आदि और जिसमें कन्दमूलादि का भक्षण अथवा रात्रिभक्षण हो ऐसे एकादशी व्रत आदि मिथ्यात्व के पर्वों की स्थापना की उनका नाम भी लेना पापबंध का कारण है क्योंकि उनके प्रसंग से अनेक धर्मात्माओं की भी पापबुद्धि हो जाती है ॥26-27॥

(12) तीव्र मिथ्यात्वयुक्त जीवों को धर्म का निमित्त मिलने पर भी धर्मबुद्धि नहीं होती ॥28॥

(13) दान देनेवाले तो अपने मान के पोषण के लिए देते हैं और लेनेवाले लोभी होकर लेते हैं सो मिथ्यात्व एवं कषाय के पुष्ट होने से दोनों ही संसार में डूबते हैं ॥31॥

(14) वर्तमान में लोग मिथ्यात्व के प्रवाह में आसक्त हैं और परमार्थ को जाननेवाले बहुत थोड़े हैं ॥32॥

(15) मिथ्यादृष्टियों के मत यथार्थ जिनधर्मियों के आगे नहीं चल पाते इसलिए उन मिथ्यादृष्टियों को ये अनिष्ट भासते ही हैं ॥34॥

(16) कुगुरु के प्रसंग से मिथ्यात्वादि पुष्ट होने से जीव निगोदादि में अनंत मरण पाता है ॥37॥

(17) जिनके मिथ्यात्वादि मोह का तीव्र उदय है, उन्हें ही कुगुरुओं के प्रति भक्ति-वंदनारूप अनुराग होता है ॥41॥

(18) मिथ्यादृष्टियों के सम्पदा का उदय देखकर दृढ़ श्रद्धानी जीवों के ये भाव नहीं होते कि यह मिथ्यादृष्टियों का धर्म भी भला है, उल्टे निर्मल श्रद्धान होता है कि 'यह काल-दोष है, भगवान ने ऐसा ही कहा है' ॥42॥

(19) ऐसे जीवों के मिथ्यात्व का उदय है जिनके धर्म में माया है अर्थात् धर्म के किसी अंग का सेवन करते हैं तो अपनी ख्याति, लाभ एवं

पूजा का आशय रखते हैं, गाथा-सूत्रों का यथार्थ अभिप्राय नहीं जानते उल्टे मिथ्या अर्थ ग्रहण करते हैं, सूत्र के अतिरिक्त बोलने में जिन्हें शंका नहीं होती यद्वा-तद्वा कहते हैं, कुगुरु को पक्षपातवश सुगुरु बतलाते हैं तथा पापरूप दिवस को पुण्यरूप मानते हैं ॥44 ॥

(20) कई जीव धर्म के इच्छुक होकर कष्ट सहते हैं, आत्मा का दमन करते हैं और द्रव्यों का त्याग भी करते हैं परन्तु एक मिथ्यात्वरूपी विष के कण को नहीं त्यागते जिसके कारण संसार में डूब जाते हैं ॥46 ॥

(21) मिथ्यात्वयुक्त अशुद्ध पुरुषों की संगति से प्रवीण पुरुषों का भी धर्मानुराग दिन-दिन प्रति घटता हुआ हीन हो जाता है ॥47 ॥

(22) जिस क्षेत्र में मिथ्यादृष्टियों का बहुत जोर हो वहाँ धर्मात्मा को रहना योग्य नहीं है ॥48 ॥

(23) मिथ्या कथन में एकान्त को प्राप्त जो मिथ्यावादी हैं, वे पुरुष धर्म में स्थित धर्मात्माओं के प्रभाव का समस्त श्रावक समूह में पराभव करने में उद्यमी होते हैं ॥49 ॥

(24) मूर्खों को रिझाने के लिए मिथ्यात्व संयुक्त जीवों के विपरीत आचरण की प्रशंसा करना कभी भी योग्य नहीं है ॥58 ॥

(25) महा मिथ्यादृष्टि को भी सज्जन तो भला ही उपदेश देते हैं फिर उसका भला होना-न होना भवितव्य के आधीन है ॥62 ॥

(26) कई मिथ्यादृष्टि जीव अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर अभिमान करते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं कि 'हे भाई! पाँच महाव्रत के धारी मुनि भी स्व-पर को जाने बिना द्रव्यलिंगी ही रहते हैं तो फिर गृहस्थों की तो क्या बात। अत: तत्त्वों के विचार में सतत उद्यमी रहना योग्य है' ॥64 ॥

(27) रे जीव! तू अन्य आानी मिथ्यादृष्टियों के दोषों का क्या निश्चय करत है, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही, तू स्वयं को ही क्यों नहीं जानता, यदि तेरे निश्चल सम्यक्त्व नहीं तो तू भी तो दोषवान है ॥70 ॥

(28) जो जीव मिथ्यात्व का आचरण करते हुए भी निर्मल जिनधर्म की

वांछा करते हैं, वे ज्वर से ग्रस्त होते हुए भी खीर आदि वस्तु खाने की इच्छा करते हैं ॥71 ॥

(29) जो अन्यथा आचरण करता है वह मिथ्यादृष्टि ही है, कुल से कुछ साध्य नहीं है। जैसे कोई बड़े कुल की भी स्त्री है पर व्यभिचार का सेवन करती है तो व्यभिचारी ही है, कुलीन नहीं ॥72 ॥

(30) मिथ्यादृष्टियों का तो संग भी अहितकारी है, पर उसे तो जो करते नहीं और उसे छोड़कर उनके धर्म को करते हैं, वे पापी जीव चोर का संग छोड़कर आप ही चोरी करते हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टियों का कहा हुआ आचरण अंश मात्र भी करना योग्य नहीं है ॥75 ॥

(31) घर के स्वामी के द्वारा मिथ्यात्व की अंश मात्र भी प्रशंसादि करना योग्य नहीं है क्योंकि घर के कुटुम्ब का स्वामी होकर भी जिसने मिथ्यात्व की रुचि और सराहना की उसने अपने सारे ही वंश को संसार समुद्र में डुबा दिया ॥77 ॥

(32) डंडाचौथ, गोगानवमी, दशहरा, गणगौर एवं होली आदि का तथा और भी जिनमें मिथ्यात्व एवं विषय-कषाय की वृद्धि होती है ऐसे समस्त प्रकार के मिथ्या पर्वों का आचरण करनेवालों के सम्यग्दर्शन नहीं है, मिथ्यात्व ही है ॥78 ॥

(33) जो स्वयं दृढ़ श्रद्धानी हैं ऐसे कोई विरले उत्तम पुरुष ही अपने समस्त कुटुम्ब को उपदेशादि के द्वारा मिथ्यात्व से रहित करते हैं सो ऐसे पुरुष थोड़े हैं ॥79 ॥

(34) मिथ्यात्व के उदय में जीवों को प्रकट भी जिनदेव प्राप्त नहीं होते ॥80 ॥

(35) जो पुरुष मिथ्यात्व में आसक्त है और सम्यग्दर्शनादि गुणों में मत्सरता धारण करता है, वह पुरुष क्या माता के उत्पन्न हुआ, अपितु नहीं हुआ अथवा उत्पन्न भी हुआ तो क्या वृद्धि को प्राप्त हुआ, अपितु नहीं हुआ ॥81 ॥

(36) मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले जीव को सैकड़ों विघ्न आते हैं परन्तु उन्हें मूर्ख लोग गिनते नहीं हैं और धर्म का सेवन करते हुए किसी को यदि किंचित् भी विघ्न हो तो उस विघ्न को धर्म से हुआ कहते हैं - ऐसी विपरीत बुद्धि का होना मिथ्यात्व की महिमा है ॥84 ॥

(37) मिथ्यात्वसहित जीव को परम उत्सव भी महा विघ्न है क्योंकि उसके किसी पुण्य के उदय से वर्तमान में सुख सा दिखता है परन्तु मिथ्यात्व पाप का बंध होने से आगामी नरक का महा दु:ख उत्पन्न होता है। इसलिए मिथ्यात्वसहित सुख भी भला नहीं है ॥85 ॥

(38) मिथ्यात्व से युक्त जीव धनादि सहित हो तो भी दरिद्र है क्योंकि परद्रव्य की हानि-वृद्धि से वह सदा आकुलित है ॥88 ॥

(39) जिसको धर्म कार्य तो रुचता नहीं, जैसे-तैसे उसको पूरा करना चाहता है, पर व्यापार आदि को रुचिपूर्वक करता है, सो यह ही मिथ्यादृष्टि का चिह्न है ॥89 ॥

(40) जिनमत में रागी-द्वेषी अपूज्य कुदेवों की पूजा मिथ्यात्व को करनेवाली कही गई है ॥90 ॥

(41) कई अधम मिथ्यादृष्टि जो कि मिथ्यात्व राजा के द्वारा ठगाये गए हैं सम्यक् शास्त्रों की निन्दा करते हैं और उसमें होनेवाले नरकादि के दु:खों को गिनते नहीं हैं ॥97 ॥

(42) कितने ही मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा किए गए तपश्चरणादि क्रियाओं के आगम रहित अनेक आडम्बर मूर्खों को ही रंजायमान करने के लिए होते हैं, ज्ञानियों को नहीं, ज्ञानियों को तो वे निन्द्य ही भासते हैं ॥100 ॥

(43) कुगुरु मिथ्यात्व का मूल कारण है ॥104 ॥

(44) सद्गुरु के वचनरूपी सूर्य का तेज मिलने पर भी जिनका मिथ्यात्व अंधकार नष्ट नहीं होता, वे जीव उल्लू जैसे हैं ॥108 ॥

(45) मिथ्यात्व से युक्त जीवों की यह मूर्खता है और उनके ढीठपने को

धिक्कार हो कि तीन लोक के जीवों को मरता हुआ देखकर भी वे अपनी आत्मा का अनुभव नहीं करते और पापों से विराम नहीं लेते ॥109 ॥

(46) मिथ्यात्व से मोहित जीवों की रति मिथ्या धर्मों में ही होती है, शुद्ध जिनधर्म में नहीं ॥113 ॥

(47) मिथ्यादृष्टि जीव धर्म का स्वरूप नहीं जानते सो न जाननेवालों पर कैसा रोष–ऐसा जानकर ज्ञानी उन पर मध्यस्थ रहते हैं ॥117 ॥

(48) मिथ्यात्व व कषायों के द्वारा जो अपना घात स्वयं करते हैं अर्थात् उन्हें अपना आत्मा ही वैरी है, उन्हें दूसरे जीवों पर दया कैसे हो सकती है ! ॥118 ॥

(49) वे जीव मिथ्यात्वादि के द्वारा नरकादि ही के पात्र हैं, जो जिनाज्ञा भंग करते हैं और अपनी पण्डिताई से अन्यथा उपदेश कहते हैं ॥124 ॥

(50) जिन जीवों के मिथ्यात्व का तीव्र उदय है, उन्हें बार–बार उपदेश देने से कुछ साध्य नहीं है क्योंकि वे तो उल्टे विपरीत ही परिणमते हैं ॥125 ॥

(51) जिन जीवों का हृदय अशुद्ध और मिथ्या भावों से मलिन है, वे धर्मवचनों से क्या समझेंगे अर्थात् कुछ नहीं समझेंगे। अत: ऐसे विपरीतमार्गी जीवों को उपदेश देने में कुछ भी सार नहीं है, उनके प्रति मध्यस्थ रहना ही उचित है ॥126 ॥

(52) वे मिथ्यादृष्टि हैं, जिन्हें सुगुरु और कुगुरु में अन्तर नहीं दिखाई देता ॥130 ॥

(53) जो जीव नीचे गिरनेरूप आलम्बन को ग्रहण करते हैं, वे मिथ्यात्वसहित हैं, उनको ही अणुव्रत–महाव्रतादिरूप ऊपर की दशा का त्याग करके निचली दशा रुचती है ॥142 ॥

(54) साधर्मियों के प्रति तो अहितबुद्धि है और बंध–पुत्र आदि के प्रति अनुराग है तो प्रकटपने ही मिथ्यात्व है – ऐसा सिद्धांत के न्याय से जानना चाहिए ॥147 ॥

(55) उन मिथ्यात्वरूपी सन्निपात से ग्रस्त जीवों का कौन वैद्य है जो जिनराज को मानते हुए भी कुदेवों को नमस्कार करते हैं। अन्य जीव तो मिथ्यादृष्टि ही हैं परन्तु जो जैनी होकर भी अन्य रागादि दोषसहित कुदेवों को वंदते-पूजते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टि हैं ॥149 ॥

(56) वे जीव मिथ्यादृष्टि हैं जो चैत्यालय आदि में भेद मानकर कि ये चैत्यालयादि तो हमारे हैं और ये दूसरों के हैं परस्पर में भक्ति नहीं करते और धन नहीं खरचते ॥150-151 ॥

(57) तब तक मिथ्यात्व की मजबूत गाँठ का खोटा माहात्म्य है जब तक जिनवचनों को पाकर भी जीव को हित-अहित का विवेक उल्लसित नहीं होता ॥153 ॥

(58) मिथ्यात्व का ठिकाना जो निकृष्ट भाव उससे नष्ट हुआ है, महाविवेक जिनका ऐसे हमें इस काल में स्वप्न में भी सुख की संभावना कैसे हो ! ॥158 ॥

(59) मिथ्यात्व की प्रवृत्ति इस काल में बहुत है इसलिए हम जीवित हैं और श्रावक कहलाते हैं, सो भी आश्चर्य है ॥159 ॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

....पृष्ठ 6 का शेष

आत्मा को समझने की जिज्ञासा

अरे जीव ! ऐसे स्वरूप को साधने के समय तू निश्चिंत होकर कहाँ मोहनिद्रा में पड़ा है ? तू जाग रे जाग ! तेरा चैतन्य-निधान लुटा जा रहा है, उसे सँभाल ! आत्मभान बिना बाह्यक्रिया और राग के मोह में तू संसार में भ्रमण कर रहा है, उससे छूटने का अवसर अब तुझे मिला है, तो सत्समागम से आत्मस्वभाव का निर्णय कर। ऐसा दृढ़ निर्णय कर कि निर्विकल्पता होकर स्वसंवेदनप्रत्यक्ष अनुभव हो।

[आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-27, अंक-3]

तीर्थधाम मङ्गलायतन में शुरु हुई 'बहनों द्वारा सिर ढँकने की' एक स्वस्थ परम्परा

सभी मुमुक्षु समाज को एक समाचार देते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि तीर्थधाम मङ्गलायतन में एक स्वस्थ परम्परा प्रारम्भ हुई है। तीर्थधाम में प्रतिदिन हजारों की तादाद में भाई-बहिन दर्शन हेतु पधारते हैं। जिसमें ट्रस्ट ने निर्णय किया है जिन बहनों के सिर पर दुपट्टा ढँका नहीं होगा उसके लिये मुख्य द्वार पर सिर ढँकने के लिये एक श्वेत दुपट्टा दिया जाएगा और यह परम्परा दीपावली के पूर्व से ही शुरु हो चुकी है। इस परम्परा का सभी मुक्त हृदय से प्रशंसा भी कर रहे हैं।

कोई भी जिनमन्दिर हो महिलाओं को सिर ढँककर ही प्रवेश करना चाहिए। यह जैन संस्कृति ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति में भी इसका समर्थन किया गया है। इसके कई कारण हैं—

- स्त्रियों के बाल लम्बे होने के कारण पवित्र परिसर में गिरते हैं, जिससे वह स्थान अपवित्र होता है।
- खुले हुए सिर से शील की मर्यादा भंग होती है।
- दिगम्बर मुनिराज भी बिना ढँके हुए सिर वाले भाई-बहनों से आहार नहीं लेते।
- अन्य भारतीय संस्कृतियों में आज भी उनके परिसर में सिर ढँककर ही प्रवेश कर सकते हैं।

अत: समस्त मुमुक्षुओं से निवेदन है मङ्गलायतन द्वारा शुरु की गयी इस परम्परा में सहयोग देकर, अन्य सभी मुमुक्षु संस्थायें भी इसका अनुकरण करें तो श्रेष्ठ रहेगा।

— निदेशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

पन्द्रहवाँ वार्षिक महोत्सव एवं मङ्गलार्थी साक्षात्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 1 फरवरी से 6 फरवरी 2018 तक पन्द्रहवाँ वार्षिक महोत्सव एवं मङ्गलार्थी साक्षात्कार शिविर अभूतपूर्व उपलब्धियों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। 01 फरवरी प्रात: उद्घाटन सत्र में मङ्गल कलश शोभायात्रापूर्वक विशाल मानस्तम्भ के समक्ष ध्वजारोहण हुआ। उसके पश्चात् बाहुबली जिनमन्दिर में श्री चौसठ ऋद्धि माण्डले के ऊपर मंगल कलश की स्थापनापूर्वक चौसठ ऋद्धि विधान प्रारम्भ किया गया। विधानोपरान्त कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप में शिविर का भव्य उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन के कार्यक्रम में प्रात: प्रौढ़ कक्षा ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन ने ली एवं चौसठ ऋद्धि विधान के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन एवं ब्रह्मचारी हेमन्तभाई के द्वारा गुरुदेवश्री के वचनामृत पर स्वाध्याय कराया गया तत्पश्चात् डॉ. अरुण जैन द्वारा मुनिराजों की चौसठ ऋद्धि पर मार्मिक कक्षा हुई। दोपहर काल में व्याख्यानमाला में डॉ. योगेश जैन अलीगंज, डॉ. किरीटभाई गोसलिया यूएसए, पण्डित अभिनय शास्त्री कोटा, श्रीमान प्रकाशचन्द सेठी जयपुर आदि का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात् पण्डित सचिन जैन द्वारा अलिंगग्रहण के बोलों पर स्वाध्याय कराया गया। रात्रिकाल में श्री जिनेन्द्रभक्ति एवं पण्डित वीरेन्द्र जैन आगरा द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक पर स्वाध्याय कराया गया।

संध्याकालीन कार्यक्रम में जिनेन्द्रभक्ति, मुख्य स्वाध्याय एवं नवीन प्रवेशार्थियों के लिए – भजन प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता एवं प्रतिभा प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

अन्तिम दिन बाहर से पधारे हुए विशिष्ट विद्वानों द्वारा नवीन प्रवेशार्थियों का साक्षात्कार लिया गया। उसके पश्चात् उनका परीक्षापरिणाम घोषित किया गया। अन्त में विद्वानों के अभिवादनपूर्वक पन्द्रहवाँ वार्षिक महोत्सव एवं साक्षात्कार शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस कार्यक्रम में ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; पण्डित वीरेन्द्र जैन,

आगरा; पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; डॉ. अरुणकुमार जैन, जयपुर; पण्डित सचिन जैन, मङ्गलायतन; डॉ. किरीटभाई गोसलिया, यूएसए; ब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर आदि विद्वानों ने ज्ञान गंगा बहायी। पण्डित अशोक लुहाड़िया कार्यक्रम के निर्देशक रहे एवं विधानाचार्य पण्डित संजय शास्त्री रहे। समस्त कार्यक्रमों का संयोजन पण्डित सुधीर शास्त्री एवं उनके सहयोगी गोमटेश शास्त्री एवं नवीन शास्त्री ने किया।

प्रथम दिन ध्वजारोहण श्री वाडीलाल परिवार, अहमदाबाद के शुभहस्ते किया गया। माण्डले पर मंगलकलश श्रीमती बीनाबेन, देहरादून; धर्मपत्नी मनुभाई लन्दन; श्री पण्डित अभिनय शास्त्री, कोटा हस्ते प्रेमचन्द बजाज; श्री राजकुमार जैन, सहारनपुर ने विराजमान किए। चौसठ ऋद्धि विधान का आयोजन श्री प्रेमचन्द बजाज कोटा ने अपने पिताश्री स्वर्गीय पद्मचन्द बजाज की स्मृति में किया। अन्तिम दिन तीर्थधाम मङ्गलायतन के स्थापना दिवस पर विशाल शोभायात्रापूर्वक श्री आदिनाथ भगवान का कैलाशपर्वत पर मस्तकाभिषेक किया गया।

इस वार्षिक महोत्सव के साथ-साथ नवीन मङ्गलार्थियों के प्रवेश हेतु चयन प्रक्रिया की गई। जिसमें श्री पारस जैन पूना, श्री स्वप्निल जैन महासचिव एवं डीपीएस अलीगढ़ की टीम का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

नये प्रवेश के लिए आए हुए छात्रों में 17 छात्रों को मङ्गलार्थी बनाया गया। नए मङ्गलार्थियों का अभिनंदन तीर्थधाम मङ्गलायतन के ट्रस्टियों ने किया एवं श्री पवन जैन ने सभी नए प्रवेशार्थियों को बधाई प्रस्तुत की।

महोत्सव के बीच में ही मङ्गलार्थियों की प्रतिभाओं को सम्मानित किया गया। इस प्रकार पन्द्रहवाँ वार्षिकोत्सव एवं मङ्गलार्थी साक्षात्कार शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

मुमुक्षु आश्रम कोटा में नवीन विद्यालय प्रारम्भ

कोटा : आदरणीय बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' की आध्यात्मिक नगरी और शैक्षणिक नगरी के नाम से प्रसिद्ध कोटा में प्रेमचन्द बजाज चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन मुमुक्षु आश्रम ट्रस्ट द्वारा आचार्य समन्तभद्र विद्यानिकेतन का भव्य शुभारम्भ एवं आचार्य धरसेन सिद्धान्त महाविद्यालय का दीक्षान्त समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

ज्ञातव्य है कि मुमुक्षु आश्रम कोटा की स्थापना धर्म अनुरागी दानवीर प्रेमचन्द बजाज कोटा द्वारा की गयी। जिसमें भव्य जिनालय, पहाड़ी के ऊपर मुनि सुव्रतनाथ

भगवान की वीतरागी प्रतिमा की स्थापना एवं आचार्य धरसेन सिद्धान्त महाविद्यालय जो कि देश का तीसरा शास्त्री करानेवाला महाविद्यालय है संचालित किया जा रहा है।

आश्रम एवं महाविद्यालय की स्थापना व संचालन में एक ओर जहाँ श्री प्रेमचन्द बजाज ने मुक्त हस्त से पुण्योपार्जित धन को लगाया व लगा रहे हैं वहीं पर पण्डित रतनचन्द शास्त्री एवं धर्मेन्द्र शास्त्री सपरिवार निर्देशक के रूप में कार्य करते हुए अपने तन-मन से रात-दिन इसको सफल बनाने में लगे हुए हैं।

साथ ही श्री प्रेमचन्द बजाज द्वारा आचार्य समन्तभद्र विद्यानिकेतन का शुभारम्भ किया गया है जिसमें अंग्रेजी माध्यम से पढ़नेवाले बालकों के लिये प्रवेश दिया जाएगा। जिसमें सभी सुविधाएँ नि:शुल्क दी जा रही हैं एवं भविष्य में उन्हें शास्त्री का पाठ्यक्रम करने पर अन्य विशेष सुविधाएँ भी प्रदान की जाएँगी। ये हमारे लिए बहुत ही गौरव का विषय है कि हमारे समाज में जहाँ इतने उदार मना भामाशाह प्रेमचन्दजी बजाज जैसे धर्म प्रभावना में खर्च करनेवाले हैं।

इस उद्घाटन समारोह एवं दीक्षान्त समारोह के अवसर पर पूरे मुमुक्षु आश्रम परिवार धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रथम वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

भोपाल : देश के हृदय क्षेत्र मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के समीप निर्मित तीर्थधाम ज्ञानोदय का प्रथम वार्षिक महोत्सव 25 से 28 जनवरी 2018 हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर तीन दिन तक पूजन, विधान, प्रवचन गोष्ठी आदि के माध्यम से सैकड़ों मुमुक्षुओं ने ध्धर्म लाभ लिया। ब्रह्मचारी जतीशभाई के निर्देशन में पण्डित विवेक शास्त्री दलपुर, पण्डित अशोक जैन उज्जैन एवं पण्डित सम्मेदजी द्वारा यह विधान सम्पन्न कराया गया।

ज्ञान वैराग्य के इस महा अनुष्ठान में पण्डित देवेन्द्र जैन बिजौलियां, पण्डित अनिल जैन भिण्ड एवं पण्डित श्रेणिक जैन जबलपुर के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। इसी महोत्सव के मध्य में शास्त्री महाविद्यालय खोलने की घोषणा की गई।

वैराग्य समाचार

सहारनपुर : स्वर्गीय श्री हेमचन्द जैन की धर्मपत्नी श्रीमती जिनेन्द्रमाला जैन, मातुश्री देवेन्द्र जैन का स्वर्गवास शान्तपरिणाम से हुआ है। तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार आपके शीघ्र निर्वाण की भावना भाता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन के
प्रवेश पात्रता शिविर की झलकियाँ

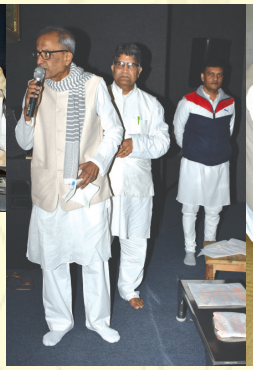

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

बैर करौ वा हित करौ, होत सबल तैं हारि।
मीत मझैं गौरव घटै, सत्रु भए दै मारि॥110॥

अर्थात् बलशाली के साथ बैर / शत्रुता करो या हित / मित्रता करो; अपनी ही पराजय होती है। यदि वे मित्र हो जाते हैं तो अपना गौरव / बड़प्पन कम हो जाता है और शत्रु हो जाते हैं तो मार डालते हैं।

भाव यह है कि समान-स्थितिवालों के साथ ही किसी भी प्रकार का पारस्परिक व्यवहार करना चाहिए॥110॥

जाकी प्रकृति करूर अति, मुलकत होय लखै न।
भजै सदा आधीन परि, तजै जुद्ध में सैन॥111॥

अर्थात् जिसकी प्रकृति अति क्रूर होती है, वह कभी मुस्कराता हुआ दिखाई नहीं देता है। पराधीन होने पर ही वह अपनी सेवा करत है; अन्यथा तो युद्ध में इशारे मात्र से ही छोड़ देता है।

भाव यह है कि दुष्ट-वृत्तिवाला अपने निहित-स्वार्थ की सिद्धि हेतु ही किसी का होता लगता है; उसके बाद उसे किसी से कोई प्रयोजन नहीं होता है॥111॥

[बुधजन सतसई]

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com